अष्टम पूजा

कविवर पंडित संतलालजी कृत

1024
गुण सहित

श्री सिद्धचक्र विधान पूजा

: मधुर स्वर :

पण्डित सुनीलजी शास्त्री, राजकोट

सुश्री श्वेतल जैन, राजकोट

सर्वोदय अहिंसा

सर्वः सर्वत्र नन्दतु

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

छप्पय

ऊरध अधो सु रेफ सबिंदु हंकार विराजे,
अकारादि स्वर लिप्त कर्णिका अन्त सु छाजे।
वर्ग्गनिपूरित वसुदल अम्बुज तत्त्व संधिधर,
अग्रभाग में मंत्र अनाहत सोहत अतिवर।।
पुनि अंत ह्रीं बेढ्यो परम, सुर ध्यावत अरि नाग को।
ह्वै केहरि सम पूजन निमित, सिद्धचक्र मंगल करो।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिन् ! चतुर्विंशति-अधिक-एकसहस्र-गुणसहितविराजमान...
अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। ...
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

दोहा

सूक्ष्मादिक गुण सहित हैं, कर्मरहित निरोग।
सिद्धचक्र सो थापहूं, मिटै उपद्रव योग।।

(इति यंत्रस्थापनार्थं पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

गीता

निज आत्मरूप सु तीर्थ मग नित, सरस आनंदधार हो।
नाशे त्रिविध मल सकल दुखमय, भव-जलधि के पार हो।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, नीरसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल सुरूप सुगन्ध चन्दन, एक भव तप नासही।
सो भव्य मधुकर प्रिय सु यह, नहिं और ठौर सु वास ही।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, मलयसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अबाधित आदि-अन्त, समान स्वच्छ सुभाव हो।
ज्यों तुम बिना तंदुल दिपै त्यूँ, निखिल अमल अभाव हो।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, अक्षतं पूजा करूँ।।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

गीता

गुण पुष्पमाल विशाल तुम, भवि कंठ पहिरैं भावसों।
जिनके मधुप मन रसिक लुब्धित, रमत नितप्रति चावसों।।
यातैं उचित ही है जु कुम पद, पुष्पसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म सरस सुपाक, मधुर, समान और न रस कहीं।
ताके हो आस्वादी सु, तुम सम और संतुष्टित नहीं।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, चरुनसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीता

स्व-पर प्रकाश स्वभावधर ज्यूँ, निज-स्वरूप सँभारते।
त्यूँ ही त्रिकाल अनंत द्रव, पर्याय प्रकट निहारते।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, दीपसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

गीता

वर ध्यान अगनि जराय वसुविधि, ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं।
राजैं अचल शिव थान नित, तिंह धर्मद्रव्य अभावतैं।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, धूपसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गीता

सर्वोत्कृष्ट सु पुण्य फल, तीर्थेश पद पायो महा।
तीर्थेश पद को स्वरुचिधर, अव्यय अमर शिवफल लहा।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद, फलनसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

गीता

अष्टांग मूल सु विधि हरो, निज अष्ट गुण पायो सही।
अष्टार्ध गति संसार मेटि सु अचल ह्वैं अष्टम मही।।
यातैं उचित ही है जु तुम पद अर्घसों पूजा करूँ।
इक सहस अरु चौबीस गुण गण भावयुत मन में धरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्विंशत्यधिकैकसहस्रगुणसंयुक्ताय श्रीसिद्धपरमेष्ठिने
अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

हरिगीतिका

निर्मल सलिल शुभ वास चन्दन, धवल अक्षत युत अनी।
शुभ पुष्प मधुकर नित रमैं चरु, प्रचुर स्वाद सुविधि घनी।।
वर दीप माल उजाल धूपायन, रसायन फल भले।
करि अर्घ सिद्ध-समूह पूजत, कर्मदल सब दलमले।।
ते क्रमावर्त नसाय युगपत, ज्ञान निर्मलरूप हैं।
दुख जन्म टार अपार गुण, सूक्षम स्वरूप अनूप हैं।।
कर्माष्ट बिन त्रैलोक्य पूज्य, अदूज शिव कमलापती।
मुनि ध्येय सेय अमेय, चहुँ गुण गेह, द्यो हम शुभमती।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-अधिक-एकसहस्रगुणसंयुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने सर्वसुखप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

जयमाला

दोहा

होनहार तुम गुण कथन, जीभ द्वार नहिं होय।
काष्ठ पाँवसैं अनल थल, नाप सकै नहिं कोय।।
सूक्षम शुद्ध-स्वरूप का, कहना है व्यवहार।
सो व्यवहारातीत हैं, यातैं हम लाचार।।
पै जो हम कछु कहत हैं, शान्ति हेत भगवन्त।
बार बार थुति करन में, नहिं पुनरुक्त भनन्त।।

पद्धड़ी

जय स्वयं शक्ति आधार योग, जय स्वयं स्वस्थ आनंद भोग।
जय स्वयं विकास आभास भास, जय स्वयंसिद्ध निजपद निवास।।
जय स्वयंबुद्ध संकल्प टार, जय स्वयं शुद्ध रागादि जार।
जय स्वयं स्वगुण आचार धार, जय स्वयं सुखी अक्षय अपार।।
जय स्वयं चतुष्टय राजमान, जय स्वयं अनन्त सुगुण निधान।
जय स्वयं स्वस्थ सुस्थिर अयोग, जय स्वयं स्वरूप मनोग योग।।
जय स्वयं स्वच्छ निज ज्ञान पूर, जय स्वयं वीर्य रिपु वज्र चूर।
जय महामुनिन आराध्य जान, जय निपुणमती तत्त्वज्ञ मान।।

जय सन्तनि मन आनन्दकार, जय सज्जन चित वल्लभ अपार।
जय सुरगण गावत हर्ष पाय, जय कवि यश कथन न करि अघाय।।
तुम महातीर्थ भवि तरण हेत, तुम महाधर्म उद्धार देत।
तुम महामंत्र विष विघ्न जार, अघ रोग रसायन कहो सार।।
तुम महाशास्त्र का मूल ज्ञेय, तुम महा तत्त्व हो उपादेय।
तिहुँ लोक महामंगल सु रूप, लोकत्रय सर्वोत्तम अनूप।।

तिहुँ लोक शरण अघ-हर महान, भवि देत परमपद सुख निधान।
संसार महासागर अथाह, नित जन्म-मरण धारा प्रवाह।।
सो काल अनन्त दियो बिताय, तामें झकोर दुखरूप खाय।
मो दुखी देख उर दया आन, इम पार करो कर ग्रहण पान।।
तुम ही हो इस पुरुषार्थ जोग, अरु है अशक्त करि विषय रोग।
सुर नर पशु दास कहें अनन्त, इनमें से भी इक जान 'सन्त'।।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

घत्ता-कवित्त

जय विघन जलधि जल हनन पवन बल सकल पाप मल जारन हो।
जय मोह उपल हन वज्र असल दुख अनिल ताप जल कारन हो।।
ज्यूं पंगु चढ़ै गिर, गुंग भरे सुर, अभुज सिंधु तर कष्ट भरै।
त्यों तुम थुति काम महा लज ठाम, सु अंत 'संत' परणाम करै।।

ॐ ह्रीं अर्हं चतुर्विंशत्यधिकसहस्रगुणयुक्त सिद्धेभ्यो
नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। इति पूर्णार्घ्यम् ।।

दोहा

तीन लोक चूड़ामणि, सदा रहो जयवन्त।
विघ्नहरण मंगलकरन, तुम्हैं नमें नित 'सन्त'।।

इत्याशीर्वादः।

सर्वोदय अहिंसा
सर्वः सर्वत्र नन्दतु

पूरण मंगलरूप महा यह पाठ है;
सरस सुरुचि सुखकार भक्ति को ठाठ है।
शब्द-अर्थ में चूक होय तो हो कहीं;
थुतिवाचक सब शब्द-अर्थ यामें सही।।
जिनगुण करण आरंभ हास्य को धाम है;
वायस का नहिं सिंधु उतीरण काम है।
पै भक्तनि की रीति सनातन है यही;
क्षमा करो भगवंत शांति पूरण मही।।

इत्याशीर्वादः परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।